7107

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक २ : जून १९८०

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ४ : अंक २

जून १९८०

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

पूरनचन्दजी नाहर ३७

जयसिंह देव ४३

श्रीपाल ४८

भगवान पार्श्वनाथ ५४

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६३

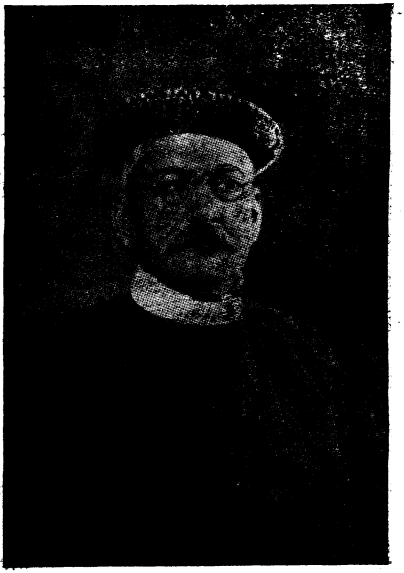

पूरनचन्दजी नाहर

पूरनचन्दजी नाहर

पूरनचन्दजी नाहर का जन्म १५ मई १८७५ में अजीमगंज के प्रख्यात नाहर परिवार में हुआ था। आपके पिताजी का नाम रायबहादुर सिताब चन्दजी नाहर एवं मातुश्री का गुलाब कुमारी था। सिताबचन्दजी वहाँ के एक लब्ध प्रतिष्ठित जमींदार थे। इतना ही नहीं वे जितने धर्म पारायण थे उतने ही विद्वान भी थे। कितने ही जैन भजनों का संग्रह कर उन्होंने उन्हें ग्रंथाकार में प्रकाशित किया। जिसमें स्वरचित हिन्दी एवं बंगला भजन भी संग्रहित थे। पिता की वह काव्य प्रतिभा, स्वधर्मानुरागिता, प्राचीन साहित्य एवं शिल्प प्रेम आपमें और सुन्दर रूप में विकसित हुआ।

आपने अपनी दादीश्री के नाम से प्रतिष्ठित प्राणकुमारी जुबली हाई स्कूल से सन् १८९१ में एण्ट्रेस परीक्षा और १८९५ में कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कॉलेज से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। बंगाल में आनेवाले जैन समाज में आप ही प्रथम ग्रेजुएट थे। तदुपरान्त कानून का अध्ययन कर आप सन् १९०३ में बी० एल० परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बहरमपुर जिला अदालत में प्रतिष्ठित हुए। फिर १९०८ में पाली भाषा से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष आप स्थायी रूप से कलकत्ता निवास के लिए आए एवं २४ परगना जिला अदालत में प्रविष्ट हुए। साथ ही हाई कोर्ट के ओरिजनल साइड में सोलिसिटर होने के लिये कुछ दिन सोलिसिटर भूपेन्द्र नाथ बसु के सान्निध्य में आर्टिकल क्लर्क के रूप में भी कार्य किया। अन्ततः एपेलेट साइड में योग देने के लिये चेम्बर परीक्षा उत्तीर्ण कर १९१४ में आप हाई कोर्ट के वकील नियुक्त हुए। किन्तु कानून व्यवसाय में आप अधिक दिन नहीं रह सके। साहित्य एवं पुरातत्व की ओर क्रमशः आकृष्ट होने के कारण उस क्षेत्र को छोड़कर साहित्य एवं पुरातत्व में सम्पूर्ण रूप से आत्मलीन हो गये।

सत्य तो यह था कि आपकी प्रकृति का झुकाव साहित्य एवं पुरातत्व की ओर स्वाभाविक रूप से ही था। अपनी सहजात प्रवृति के वशीभूत होकर ही आपने समस्त जीवन साहित्य-सृजन एवं पुरातत्व संग्रह में उत्सर्ग कर दिया था। पुरातत्व संग्रह तो आपका नशा ही बन गया था। जहाँ कहीं भी जाते वहाँ से कुछ न कुछ संग्रह कर अवश्य लाते। इस कार्य के लिये आपने कितने ही तीर्थ और पुरातात्विक स्थानों में परिभ्रमण किया। कई बार तो इसके

लिये आपको विपद आपदाओं के सम्मुखीन भी होना पड़ा। किन्तु इससे आपका उत्साह दमित न होकर वृद्धि प्राप्त ही होता गया। इसी के परिणाम स्वरूप कुमार सिंह हॉल स्थित नाहर परिवार का गुलाब कुमारी पुस्तकालय व संग्रहशाला का निर्माण हुआ। क्या नहीं है इस संग्रहशाला में ? जिसने यह संग्रहशाला देखी वही विस्मय से हतवाक् होकर रह गया। कारण किसी एक व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार की संग्रहशाला बन जाना प्रायः असम्भव ही था। इस प्रकार का संग्रह तो बड़े-बड़े सरकारी संग्रहालयों में भी नहीं पाया जाता। यह संग्रहशाला ही आपका प्राण था। प्राचीन मुद्रा, चित्र, भास्कर्य, मूर्ति, ग्रंथ तो किस संग्रहशाला में नहीं मिलते ? किन्तु क्या मिल सकते हैं विभिन्न उपलक्ष्यों में प्राप्त आमन्त्रण-पत्र, विभिन्न परिवारों की पारिवारिक सिल, विवाह-पत्र, पुराने पत्र-पत्रिकाओं से काटे हुए चित्र, जिन्हें भारतीय, यूरोपीय संज्ञा से विभाजित कर सुन्दर ढंग से अलग-अलग सजा दिया गया हो ? न जाने कितना समय समर्पित किया होगा आपने इस कार्य को। आपका दियासलाई संग्रह तो एक युग का पूरा इतिहास ही है—पंचम जार्ज के राज्याभिषेक के चित्र से लेकर वन्देमातरम् एवं गाँधी युग तक का। पौराणिक चित्रों के साथ स्थान मिला है यूरोपीय तथा रवि वर्मा के चित्रों को। इस संग्रहालय के संबंध में अमिय चक्रवर्ती की उक्ति स्मरण हो आयी है:—"ऐसे विचित्र शिल्प ऐश्वर्य को एकत्रित देखना एक सौभाग्य है। मैंने भारत की महिमा को एक नवीन रूप में उपलब्ध किया है। इसे देखकर पूरनचन्द नाहर यदि और कुछ न कर इस संग्रहालय को ही प्रतिष्ठित कर जाते तो उनका नाम स्मरणीय रहता और संग्रहीत वस्तुयें भी चिर विस्मय का कारण बनकर रहतीं."

पूरनचन्द नाहर अपने इन सृजनात्मक कार्यों से भी कहीं बड़े थे। आपने संस्कृत, प्राकृत, पाली एवं अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दी, अंग्रेजी एवं बंगला तीनों भाषा में ही आप समरूप से लिखते थे। आपके तीन भागों में प्रकाशित जैन लेखों के संग्रह में भारत के प्रायः ३००० शिलालेख संग्रहीत व सन्निवेशित हैं। इसमें एक भाग और संयोजित होने वाला था। किन्तु राजस्थान एवं दक्षिण भारत की यात्रा कर आने के पश्चात् हठात् आपकी मृत्यु ३१ मई १९३६ को हो गयी। अतः यह संयोजित न हो सका। इस भाग में मथुरा के जैन शिला लेख संग्रहीत थे। अपूर्ण रह गई थी भूमिका। भूमिका लेखन में ही आप व्यस्त थे कि मृत्यु आपको बरबस हमलोगों से छीन-कर ले गयी। अब इस संग्रह के प्रकाशन की वार्ता चल रही है।

आपका 'एपिटाम आफ जैनिज्म' भी एक विशाल ग्रन्थ है। प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन की तुलनात्मक आलोचना के अतिरिक्त जैन धर्मतत्व, शिल्प एवं साहित्य विषयक ऐसी सुन्दर पुस्तक शायद ही कोई होगी। यह पुस्तक जैन धर्म तत्व में प्रवेश पाने के इच्छुक के लिए अवश्य पठनीय है। अभी यह पुस्तक अप्राप्य है, इसका पुनर्मुद्रण अत्यन्त आवश्यक है।

आपकी एक किताब है 'प्राकृत सुक्त रत्न माला'। इसमें विविध विषयों पर अंग्रेजी अनुवाद सहित प्राकृत भाषा का सुक्तिसंग्रह है। इस पुस्तक की भूमिका में आपके प्राकृत सम्बन्धी जो अभिमत प्रकाशित किये गये हैं उस विषय में मैं सभी का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। हममें से अनेकों की धारणा है कि संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश होती हुई आधुनिक भारतीय भाषा आविर्भूत हुई है। लेकिन आप ऐसा नहीं कहते थे। आपका कथन था प्राकृत से ही संस्कृत का उद्भव हुआ है। संस्कृत शब्द के मध्य ही उसकी सत्यता निबद्ध है। प्राकृत ही आधुनिक भाषाओं की जननी है। क्योंकि जनसाधारण की भाषा प्राकृत ही थी। उनके मतानुसार :—

"Some are of opinion that Prakrit is a corruption from Sanskrit, but the very terms "Prakrita" and "Sanskrita" speak contrawise. For the word "Prakrita" is derived from "Prakriti" which means, "the original source" while the term "Sanskrita" is derived from the root 'Kr' with the particle 'Sam' prefixed to it and conveys the meaning 'purified'. This may justly lead us to the conclusion that Prakrit was the popular language and the source which being purified by the erudite and scholastic Brahmins, come to be stereotyped into Sanskrit in the hands of the cultured classes."

'पावापुरी का प्राचीन इतिहास' हिन्दी भाषा में लिखित आपकी एक छोटी पुस्तक है। इसमें महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी का प्राचीन इतिहास विवृत हुआ है। 'सांझी संग्रह' में संग्रहीत है जैन पूजा और भजन। 'प्रथमावली' है सचित्र हिन्दी प्रथम पाठ्य पुस्तक की भाँति। इसके अतिरिक्त आपके कुछ हिन्दी निबन्ध संग्रहीत हैं 'प्रबन्धावली' में। इसका प्रकाशन आपकी मृत्यु के पश्चात् आपके सुपुत्र श्री विजयसिंहजी नाहर ने किया। इसमें प्रकाशित लेखों के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती एवं बंगला में लिखित

कई प्रबन्ध हैं जो कि समय-समय पर कहीं पढ़े गये या प्रकाशित हुए। किन्तु इन्हें ग्रन्थ रूप नहीं दिया गया। इन्हें एकत्रित कर "पूरनचन्द ग्रंथावली" के रूप में प्रकाशित किया जा सकता है कि नहीं यह विचारणीय है। इस कथन का कारण यह है कि आपके द्वारा लिखित अजस्र पत्रों के अलावा श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्पर्कित राजगीर मुकदमे में आपने कमीशन के सन्मुख जो विवरण प्रस्तुत किया था एवं क्रास एक्जामिन के समय जो प्रत्युत्तर दिये वे सब नाहर लाईब्रेरी में मौजूद हैं। विवृति को ही लीजिये। इस विवृति और प्रत्युत्तर में जैन धर्म सम्बन्धी जो गम्भीर ज्ञान और पाण्डित्य का परिचय है इसे अगर पुस्तक के रूप में ग्रंथित नहीं किया गया तो यह शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा। और यह क्षति जैन समाज की ही होगी जिसकी पूर्ति नहीं की जा सकेगी। इस विवृति के सम्बन्ध में स्वर्गीय अजित प्रसाद जी की उक्ति मैं यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा कारण अजित प्रसाद जी दिगम्बर समाज के एक प्रकाण्ड पण्डित ही नहीं थे, उन्होंने ही कमीशन के सम्मुख पूरनचन्द जी नाहर का क्रास एक्जामिन किया था। अतः उनकी उक्ति का महत्व है :—"His scholarship, his mastery of historical and philosophical matters in relation to Jainism was exhibited in an eminent degree when I cross examined him for about a month."

साहित्य एवं संग्रह कार्य में नियुक्त रहते हुए भी आप सार्वजनिक कार्य में भी भाग लेते थे। काशी विश्वविद्यालय में आप बहुत दिनों तक श्वेताम्बर जैन पक्ष के प्रतिनिधि थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक, इण्टरमिडिएट एवं बी० ए० परीक्षा के आप वर्षों तक पेपर सेटर एवं परीक्षक भी रहे। इसके अतिरिक्त पी० आर० एस० बोर्ड में भी आप परीक्षक रूप में रहे। इंगलेण्ड की रोयल एसियाटिक सोसायटी, बंगाल एसियाटिक सोसायटी, बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, बंगीय साहित्य परिषद, भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, नागरी प्रचारिणी सभा आदि कई सभाओं के आप वरेण्य सदस्य थे। बहुत दिनों तक मुर्शिदाबाद एवं लालबाग के आनरेरी मजिस्ट्रेट, अजीमगंज म्यूनिसिपलिटि के कमिश्नर, मुर्शिदाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य एवं एडवर्ड कारोनेशन स्कूल के सेक्रेटरी पद पर भी आप रह चुके थे। आर्किओलोजिकल डिपार्टमेण्ट के आप माननीय कारेसपोण्डेन्ट एवं भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना, जैन श्वेताम्बर एजुकेशन बोर्ड बाम्बे, राममोहन लाइब्रेरी कलकत्ता एवं जैन साहित्य संशोधक सभा पूना के आजीवन सदस्य थे।

आपकी तीर्थ सेवा भी अद्भुत थी। वस्तुतः आपकी इस सेवा पर जैन श्वेताम्बर समाज को गर्व था। पावापुरी एवं राजगृह तीर्थ को तो आपने समय, शक्ति एवं अर्थ देकर अमूल्य सेवाएँ अर्पित कीं। वर्तमान पावापुरी मन्दिर में शाहजहाँ कालीन जो प्रशस्ति प्राप्त हुई वह इन्हीं की प्रचेष्टा से एक दीर्घ अनुसंधान के पश्चात् मूलवेदी के तल से निकाली गयी थी। इसी प्रकार की एक और प्रशस्ति राजगृह के विपुलाचल पर्वतोस्थित पार्श्वनाथ मन्दिर से भी खोज निकाली थी। साथ ही यात्रियों की सुविधा के लिए आपने राजगृह, पावापुरी, शत्रुंजय आदि कई प्रमुख तीर्थों में विशाल आरामदेय धर्मशालाएँ बनवाईं।

तीर्थ सेवा के साथ-साथ आप समाज सेवा में भी संलग्न थे। आप थे प्रगतिवादी समाज संस्कारक। अतः कुछ लोग आपके विरोधी भी हो गये थे। किन्तु आपने कब परवाह की उसकी। कलकत्ता के जैन समाज में देशी-विलायती का झगड़ा उस समय की प्रमुख घटना थी। यह था संरक्षणवादी और विलायत जाने वालों का द्वन्द्व। इस कार्य में भी आपने हस्तक्षेप कर दूरदर्शिता के साथ इसका समाधान किया। विवाह विधियों का भी आपने संस्कार किया। अखिल भारतवर्षीय ओसवाल-महासम्मेलन का अधिवेशन हुआ था अजमेर में। आप इसके सभापति निर्वाचित हुए थे। १०४ डिग्री ज्वर लेकर आप उस सभा का सभापतित्व करने गये। क्या यह आपके अटूट मनोबल, आपकी कर्त्तव्यनिष्ठा और समाज के लिए आपके हृदय में जो गम्भीर दर्द भरा था इसका परिचायक नहीं है?

यह कहना अब कोई आवश्यक नहीं है कि जैन धर्म का प्राचीन इतिहास और पुरातत्व ही आपका प्रधान विषय था। ठीक ही तो है यदि प्राचीन इतिहास का ज्ञान हमलोगों को नहीं रहे तो विरासत का ज्ञान नहीं हो सकता एवं यह विषय इतना गम्भीर है कि एक बार इसमें प्रवेश कर लेने के पश्चात् और कुछ आवश्यकता ही नहीं रहती। ऐसा आपने अपने कई निबन्धों में स्वयं लिखा है। किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि आप समकालीन साहित्यिक एवं सामाजिक विषयों की ओर आकृष्ट नहीं थे। सभी समसामयिक विषयों से आप भिज्ञ थे। लगता है जैन लोग इसके प्रति जितने सतर्क रहे हैं उतना शायद कोई नहीं रहा। स्पष्टीकरण के लिये आपका ही वाक्य उद्धृत करता हूँ—"वे तीर्थंकर हों या चक्रवर्ती समय की गति को अवरुद्ध करने की शक्ति उनमें भी नहीं होती। जैन साहित्य में इसीलिए 'तेणं कालेणं तेणं समयेणं' अर्थात् उस

काल उस समय का व्यवहार होता है।" इस समसामयिकता को दृष्टिगत करते हुए ही आपने पर्दाप्रथा, स्त्री शिक्षा, साहित्य आदि विषयों पर प्रबन्ध लिखे। ओसवाल जाति सम्बन्धी बहुत से पत्र एवं निबन्धादि प्रकाशित किये। आपके स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी अभिमत स्तुत्य है: "किसी भी जाति की सच्ची उन्नति तभी हो सकती है जबकि उस जाति की महिलाएँ सुशिक्षित हों, उनके विचार उच्च हों। बिना इसके स्थायी उन्नति सम्भव नहीं"

साहित्य के विषय में आप लिखते हैं, "साहित्य समाज-वृक्ष का फल है और साहित्य रूपी फल में ही समाज को हराभरा रखने की शक्ति विद्यमान है" लगता है इसीलिए आपकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि जैन साहित्य सुसम्पादित होकर प्रकाशित हो। जब बौद्ध साहित्य सुसम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है तब जैन साहित्य क्यों न प्रकाशित हो? जबकि जैन साहित्य भी विस्तार एवं गम्भीरता में हर प्रगतिशील साहित्य के समकक्ष है। इस ओर आज भी कहाँ जैन समाज आकृष्ट हो पाया है।

प्राचीन के मध्य जो कुछ अच्छा था उस ओर जिस प्रकार आप आग्रही थे उसी प्रकार उसके दोषों के सम्बन्ध में सतर्क करने में भी पीछे नहीं थे। एक तो जैन समाज वैसे ही नितान्त छोटा है और यह छोटा समाज भी विभक्त है श्वेताम्बर-दिगम्बर के अतिरिक्त गच्छ-उपगच्छों में। इसके जिस कारण की ओर आपने निर्देश किया है यह कहने का साहस बीसवीं शताब्दी के हमलोगों में है या नहीं सन्देहास्पद ही है। क्योंकि जैन समाज ने उस निर्भरता को आज भी कहां ऊखाड़ फेंका है। आप ही की भाषा में, "यदि धर्म केवल आचार्यों पर निर्भर नहीं होता तो उसके इतने भाग-विभाग भी नहीं होते। यदि भगवान महावीर की वाणी सुनने को हम उनके मुखापेक्षी नहीं हुये होते तो भाग-विभाग के लिये जो परिस्थिति आज उदित हुई है वह कदापि नहीं होती।

इसी युक्ति के पृष्ठ भाग में है वैज्ञविक चिन्ताधारा और ओजस्विता जिसके अभाव में आज भी हम एकता का पथ नहीं खोज पा रहे हैं। हालांकि ये मतभेद इतने हास्यास्पद हैं कि कहने पर कोई विश्वास ही नहीं करेगा।

अतः हम कह सकते हैं कि आप अनन्य थे और परिपूर्ण मनुष्य थे। किसी शायर ने ठीक ही कहा है:—

'हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।'

जयसिंह देव

[गुजरात कहानी]

४२ वर्ष १० मास ६ दिन राज्य करने के पश्चात् महाराजा भीम का स्वर्ग-वास हो गया। इसके बाद उनके कनिष्ठ पुत्र कर्ण गुजरात के सिंहासन पर बैठे।

भीम के पुत्र मूलराज इसके पूर्व ही परलोक सिधार गये थे। वे बड़े उदार और प्रजावत्सल थे। उनकी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व की बात है—दुर्भिक्ष के कारण कर देने में असमर्थ प्रजा के लिये उन्होंने अश्वारोहण सम्बन्धी कौतुक दिखाकर भीम को परितुष्ट कर उस वर्ष का कर माफ करवाया। भीम ने आनन्दाश्रु बहाते हुए पुत्र की मनोकामना पूर्ण की। इस घटना के तीन दिन पश्चात् ही मूलराज की मृत्यु हो गयी।

प्रजा भी भीम और मूलराज को कितना चाहती थी वह तो इससे ही समझा जा सकता है कि अगले वर्ष ज्योंही उत्तम शस्य उत्पन्न हुआ प्रजा गत वर्ष का कर भी देने को प्रस्तुत हो गई। किन्तु, राजा ने वह ग्रहण नहीं किया। तब प्रजा ने सभा बुलवायी और राजा को कर लेने के लिये बाध्य किया। अन्य कोई उपाय न देखकर राजा ने कुमार मूलराज के कल्याणार्थ त्रिपुरुष प्रासाद नामक एक शिवमन्दिर उस धन से निर्मित करवाया।

कर्नाटराज जयकेशी के मयनल्ला देवी नामक एक कन्या थी। उस समय जो सोमेश्वर की तीर्थयात्रा पर जाते उन्हें गुजरात नरेश को राजकीय कर देना पड़ता। जो कर नहीं दे पाते वे सोमेश्वर की यात्रा नहीं कर सकते थे। परिणामतः अनेक यात्री कर न दे सकने के कारण भग्न-हृदय लौट जाते। इससे दुःखी होकर मयनल्ला देवी ने मन ही मन यह संकल्प किया कि वह गुजरात पति कर्ण से विवाह कर उस राज्य की रानी होगी और इस कर को समाप्त करने की व्यवस्था करेगी। अतः जयकेशी ने मयनल्ला देवी के विवाह का प्रस्ताव लेकर कर्ण के पास दूत भेजा। किन्तु कर्ण ने मयनल्ला देवी को कुरूप समझ कर उस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अस्वीकृत होकर मयनल्ला देवी ने अपनी आठ सहेलियों सहित अग्नि-प्रवेश कर प्राण त्यागने का निश्चय किया। यह संवाद सुनकर राजमाता उदयमती ने कर्ण की भावी अनिष्ट शंका से प्रेरित होकर अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्यागने का निश्चय

किया। इस महाविभूति से बाध्य होकर कर्ण ने मयनल्ला देवी से विवाह तो किया किन्तु उसकी ओर कभी भर नजर देखा भी नहीं। अन्ततः मुंजाल नामक एक मन्त्री के कौशल से वे उसकी ओर आकृष्ट हुए। समय पाकर मयनल्ला देवी को एक पुत्र हुआ। यही पुत्र आगे जाकर सिद्धराज जयसिंह के नाम से विख्यात हुआ।

जयसिंह जब मात्र तीन वर्ष के थे तभी खेलते-खेलते एक दिन सिंहासन पर जा बैठे। इसे अस्वाभाविक समझकर कर्ण ने ज्योतिषियों को बुलवाया। ज्योतिषियों ने कहा—"महाराज, इस लग्न में जो सिंहासनारूढ़ होगा वह ख्यातिमान राजा होगा।" यह सुनकर राजा ने उसी समय जयसिंह को राज्याभिषिक्त कर दिया और स्वयं उनके प्रतिनिधि बनकर कर्णावती (आजकल आशावरी) से राज्य शासन करने लगे।

इसके कुछ दिन पश्चात् ही कर्ण की मृत्यु होने पर जयसिंह के मामा मदनपाल इनके प्रतिनिधि के रूप में राज्य चलाने लगे। किन्तु कुछ दिन बीत भी नहीं पाए कि मदनपाल अहंकारी होकर अत्याचारी बन गया। फलतः सान्तू मन्त्री के कौशल से वह निहत हुआ। जयसिंह उस समय नाबालिग थे। अतः सान्तू उदयन नामक एक तीक्ष्ण बुद्धिशाली वणिक की सहायता से राज्य शासन करने लगा। सान्तू और उदयन दोनों ही जैन धर्मावलम्बी थे। इसी उदयन ने कर्णावती में 'उदयन विहार' नामक एक प्रसिद्ध जैन मन्दिर निर्माण करवाया था।

वयप्राप्त होने पर जयसिंह ने राज्य भार अपने हाथों में ले लिया। तदुपरान्त माँ के साथ एक करोड़ पच्चीस लाख के सुवर्ण-पूजोपकरण लेकर सोमेश्वर की यात्रा करने गए। इसी दौरान वे उसी बाहुलोड़ नगर पहुँचे जहाँ सोमेश्वर की यात्रा का कर लिया जाता था। वहाँ पहुँचकर बिना यात्रा किये ही मयनल्ला देवी कर देने में असमर्थ यात्रियों के साथ लौटने लगीं। यह देखकर जयसिंह ने पूछा—"माँ, यात्रा किये बिना ही तुम क्यों लौट रही हो?" मयनल्ला देवी ने कहा—"मैं यह यात्रा तभी कर सकती हूँ जब इसका कर माफ कर दिया जाय।" जयसिंह ने तुरन्त कर संग्रह करने वालों को बुलवाया एवं यह जानकर भी कि इस कर से राज्य को बहत्तर लाख की आमदनी होती है माँ के स्नेहवश उस कर को तुरन्त माफ कर दिया।

जयसिंह माँ के साथ जिस समय तीर्थयात्रा पर थे मालव पति यशोवर्मन ने इस सुयोग का लाभ उठाकर गुजरात पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि

मंत्रीवर सान्तू के कौशल से वह पराजित हुआ। फिर भी राजधानी लौटकर जयसिंह ने ज्योंही यह सुना क्रुद्ध होकर मालव पर आक्रमण किया एवं बारह वर्षों तक भीषण संग्राम करने के पश्चात् धारा नगरी को अवरोध कर उसके दुर्जय दुर्ग को भंग कर डाला। इस प्रकार यशोवर्मनदेव को पूर्णरूपेण परास्त और बन्दी कर शान्ति की सांस ली।

प्रख्यात् जैनाचार्य हेमचन्द्र के साथ जयसिंह का प्रथम साक्षात्कार सम्भवतः मालव युद्ध के पूर्व ही किसी समय हुआ था। जयसिंह से आमन्त्रित होकर हेमचंद्र उनकी सभा में पहुँचे। उनके स्वागत के पश्चात् जयसिंह ने हेमचन्द्राचार्य की विद्वता की खूब प्रशंसा की। इस पर एक ब्राह्मण बोल उठा—"वे विद्वान हुए हैं हमारे पाणिनी आदि व्याकरणों के ग्रन्थों का पठन कर।" जयसिंह सप्रश्न दृष्टि से हेमचन्द्राचार्य की ओर देखने लगे। हेमचन्द्राचार्य ने कहा—"शैशव काल में भगवान महावीर ने इन्द्र को प्रत्युत्तर देते हुए जिस व्याकरण की रचना की थी उसी जैनेन्द्र व्याकरण का हम पाठ करते हैं।" तब वह ब्राह्मण पुनः बोल उठा—"प्राचीन काल की बात छोड़िये। इस काल के किसी वैयाकरण का नाम बताइए।" इसके प्रत्युत्तर में हेमचन्द्राचार्य बोले—"महाराज यदि मेरे सहायक बनें तो मैं स्वयं अल्प दिनों में ही पंचांग नवीन व्याकरण का सृजन कर सकता हूँ।" सिद्धराज ने कहा—"मैं आपका सहायक हूँ। आप अवश्य ही इस कार्य को सम्पन्न करें।"

मालव विजयी सिद्धराज ने जब राजधानी में प्रत्यावर्तन किया तो मंगलोत्सव के समय हेमचन्द्राचार्य को उनकी प्रतिश्रुति स्मरण करवायी। हेमचन्द्राचार्य ने सहास्य प्रत्युत्तर दिया—"महाराज, सिद्ध हेम व्याकरण की रचना मैंने सवा लाख श्लोकों में एक वर्ष में ही कर दी है।" यह सुनकर सिद्धराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और शोभायात्रा में अपने हाथी की पीठ पर उस ग्रन्थ को आरोहित कर छत्र-चामर सहित उसे कोषागार में ले गए एवं अन्य व्याकरणों के बदले सिद्ध हेम व्याकरण का पठन प्रचलित करवाया।

सिद्धराज स्वयं जैनी नहीं होते हुए भी जैन धर्म के प्रबल अनुरागी हो गए थे। यहाँ तक कि संघपति के रूप में जैन तीर्थ सिद्धाचल की यात्रा की एवं उस तीर्थ और तीर्थ रक्षार्थ बारह ग्राम भी देव पूजा के लिए प्रदान किए।

उसी समय नवघन नामक एक आभीर राज ने ग्यारह बार सिद्धराज की सेना को जब परास्त कर दिया तो क्रुद्ध जयसिंह ने उसके विरुद्ध युद्ध यात्रा कर उसे परास्त एवं निहत किया। इसी प्रकार सौराष्ट्र को जयकर सज्जन नामक एक व्यक्ति को सौराष्ट्र का शासन भार अर्पित किया। सज्जन ने तीन वर्ष

का राज-कर कोष में न भेजकर उसी अर्थ से गिरनार स्थित बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमीनाथ भगवान् के काष्ठमय चैत्य के स्थान पर सुदृढ़ पाषाण का भव्य मन्दिर निर्माण करवाया। तीन वर्ष का राज-कर नहीं पाकर सिद्धराज ने सज्जन को बुला भेजा। सज्जन भी जैन वणिकों से उसी परिमाण में अर्थ संचय कर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ और समस्त घटना विवृत कर बोला —"महाराज, आपके भय से मैं वह अर्थ लाया हूँ। यदि आप जिर्णोद्धार का पुण्य संचय करना चाहते हैं तो वह अर्थ ग्रहण नहीं करें नहीं तो वह अर्थ आपके सम्मुख प्रस्तुत है आप स्वीकार करें।" सिद्धराज ने सज्जन की वाक् चातुरता पर प्रसन्न होकर वह अर्थ उसे ही लौटा दिया एवं पुनः सौराष्ट्र का शासक नियुक्त कर वहीं भेज दिया।

सिद्धराज जयसिंह एक पराक्रमशाली राजा थे। इतना ही नहीं वे विद्वानों को उत्साहित करने वाले एक दानवीर भी थे। उनकी सभा सब समय पण्डितों से सुशोभित रहती। इसी सभा में अनेक पण्डितों की मध्यस्थता में तत्कालीन सुविख्यात दिग्विजयी जैनाचार्य कुमुदचन्द्र के साथ हेमचन्द्राचार्य के गुरु देवसूरि का वाद हुआ था। इसी वाद में पराजित और लांछित होकर कुमुदचन्द्र को गुजरात का परित्याग करना पड़ा था।

जिस समय यह वाद हुआ था उस समय हेमचन्द्र ने शैशव अतिक्रम कर तारुण्य में मात्र प्रवेश ही किया था। वाद के समय वे भी गुरु के साथ एक ही पट्ट पर विराजमान थे। वृद्ध कुमुदचन्द्र उन्हें देखकर अवहेलना करते हुए बोले—"तक्रं पीतं ? दूध पीते बच्चे तुम तर्क करने आये हो तुमने दूध पी लिया तो ! अवश्य दूध के बदले घोल पी है।" किन्तु हेमचन्द्र भी कम चतुर नहीं थे। प्रत्युत्तर में बोले—"तक्रं श्वेतं। कौन कहता है तक्र पीले रंग का है। तक्र तो श्वेत रंग का होता है।" यह सुनते ही सारी सभा हँस पड़ी। तब कुमुदचन्द्र बोले—"आप लोगों के मध्य वादी कौन है ?" हेमचन्द्र इस बार भी कैशोर सुलभ चंचलतावश बोल उठे—"मैं।" तब कुमुदचन्द्र ने कहा—"इस शिशु के साथ मेरा वाद !" हेमचन्द्र ने भी उनके नग्नत्व को लक्ष्य कर कहा—"वृद्ध तो मैं हूँ, आप ही तो शिशु हैं तभी तो लगता है आपने अभी तक कपड़े पहनना भी नहीं सीखा है।"

आखिर सिद्धराज ने उभय पक्ष को इस वितण्डा का निषेध किया क्योंकि, कुमुदचन्द्र उनके दादा के गुरु थे। अतः मयनल्ला देवी भी कुमुदचन्द्र के ही पक्ष में थी। उसने सभासदों से भी यह बात कह दी थी। किन्तु कुमुदचन्द्र ने वाद के विषय का चयन ही गलत किया था। विषय था कैवल्य प्राप्ति

के पश्चात् तीर्थंकर आहार नहीं करते, स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता, बिना नग्नत्व के मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता। हेमचन्द्र ने यह प्रचार किया कि दिगम्बर कुमुदचन्द्र स्त्री को मोक्ष नहीं होगा कहकर स्त्रियों के सुकृत का ही अवमूल्यन करते हैं। यह सुनकर मयनल्ला देवी का मन भी कुमुदचन्द्र के विरुद्ध हो गया।

तदुपरान्त वाद प्रारम्भ हुआ। वाद का विषय पहले से ही निश्चित था। शर्त यह थी कि यदि श्वेताम्बर पराजित होंगे तो उन्हें दिगम्बरत्व ग्रहण करना होगा और दिगम्बर पराजित होने पर उन्हें गुजरात परित्याग कर जाना होगा। यह शर्त स्वीकृत हो जाने पर देवसूरि ने कुमुदचन्द्र को ही पहले उनके पक्ष का मण्डन करने को कहा।

कुमुदचन्द्र ने सर्वप्रथम राजा को जो आशीर्वाद दिया उसका अर्थ था—

हे राजन्, आपके यश को स्मरण करने से सूर्य खद्योत की भाँति दीप्तिशाली, चन्द्र पुराने मकड़े के जाले की भाँति निष्प्रभ और हिमाच्छादित पर्वत मशक की भाँति और आकाश जलावर्त की भाँति प्रतीत होने लगता है। फिर आगे तो वाणी ही निरुद्ध हो जाती है।

इसके बाद देवसूरि ने दो अर्थवाला श्लोक पढ़ा जिसका अर्थ था—

हे चालुक्य महाराज, आपका राज्य और जिन शासन चिर स्थायी हो। (राजा के लिए) जो राजा शत्रुओं को शान्ति प्राप्त नहीं करने देते, उज्ज्वल आकाश की भाँति कीर्तिप्रभा से जो मनोहर है, न्याय पथ की प्रसार पद्धति के जो आगार हैं, जो पर पक्ष के हस्तियों के सतत् मद विकारी बलवान हस्तियों के द्वारा सुशोभित हैं। (जिन शासन के लिए) जो जिन शासन स्त्रियों को मुक्ति प्रदान करता है, श्वेत वस्त्रधारी यतियों की उल्लसित कीर्तियों से मनोहर है, नय मार्ग के विविध प्रसार पद्धति का आगार है, जो अन्य मत वादियों का गर्व जयकारी है एवं केवल ज्ञानी कभी आहार नहीं करते ऐसा ज्ञान नहीं देता।

वाद के प्रारम्भ में ही देवसूरी ने सभा एवं उपस्थित विद्वानों का हृदय जीत लिया। क्योंकि कुमुदचन्द्र ने जो वाणी निरुद्ध की बात कही वह अशुभ सूचक थी। फिर कुमुदचन्द्र ने जब वार्धक्य जनित स्खलित शब्दों में अपने पक्ष का जो समर्थन किया वह किसी के भी हृदय को स्पर्श नहीं कर सका। दूसरी ओर देवसूरि ने धाराप्रवाही ओजस्वी भाषा में जब खण्डन प्रारम्भ किया तो जय-पराजय के विषय में किसी को कोई संशय ही नहीं रहा। वाद के अन्त में जयमाला देवसूरी को प्राप्त हुई और कुमुदचन्द्र गुजरात से बहिष्कृत हो गए।

मेरुतुंगाचार्य की 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के आधार से।

श्रीपाल

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान : चम्पा। राज प्रासाद का एक अंश। राजपुत्र के जन्मोपलक्ष में नर्तकियाँ नृत्य कर रही है। मंच से उनके बाहर जाते ही दूसरी ओर से अनुचरों सहित राजा (सिंहरथ), मन्त्री (मति सागर), राजा के चचेरे भाई (अजित सेन) एवं सेनापति (कीर्तिपाल) का प्रवेश।]

सिंहरथ : बहुत दिन बाद भगवान ने आज मेरी सुनी है। मेरे पश्चात् कौन राज्य सँभालेगा सतत् यही चिन्ता वृश्चिक-दंश की भाँति मुझे पीड़ित कर रही थी। आखिर आज उस चिन्ता का अवसान हुआ। आज मेरा हृदय आनन्द से उल्लसित हो उठा है। मति-सागर ! समस्त राज्य में यह घोषणा करवा दो कि अपने भावी राजा के जन्मोपलक्ष में प्रजागण सात दिनों तक उत्सव मनायें।

मतिसागर : महाराज, यह घोषित करवाने की आवश्यकता ही कहाँ है। सुन नहीं रहे हैं आप उनका आनन्दोल्लास ? अपने भावी राजा के जन्मोपलक्ष में वे स्वतः ही अपने हृदय के आनन्द को प्रकाशित कर रहे हैं। अच्छा महाराज, इस नवजातक का नाम क्या रखेंगे ?

सिंहरथ : उसका नाम ? उसके राज्य में श्री वृद्धि होगी, प्रजा का यथोचित पालन होगा। अतः उसका नाम रखेंगे श्रीपाल।

अजित सेन : श्रीपाल हमारे वंश का तिलक होगा।

कीर्तिपाल : [धीरे-से अजित सेन के कान में] तिलक नहीं कण्टक।

अजित सेन : चुप रहो।

कंचुकी : महाराज, इस ओर आइए।

सिंहरथ : चलो, हमसब नवजातक को देखकर आएँ।

[सिंहरथ के पीछे-पीछे सभी चले जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[महारानी कमलप्रभा का कक्ष। वे अश्रु बहा रही हैं। मन्त्री उन्हें सान्त्वना दे रहे हैं]

मति सागर : महारानी ! राज्य पर आए इस संकट के समय यदि आप अपना धैर्य खो बैठेंगी तो इसकी रक्षा करना ही कठिन हो जाएगा। इस समय स्वयं को कठोर बनाना होगा।

कमलप्रभा : जानती हूँ महामात्य। लेकिन पति-वियोग का यह शोकाघात इतना आकस्मिक है कि मैं इसे झेलने में असमर्थ हूँ। मेरा हृदय टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है।

मतिसागर : महारानी !

कमलप्रभा : मन्त्रीवर, विवाह के बीस वर्षों पश्चात् कितनी साधना, कितनी मनौतियों से प्राप्त किया था हमलोगों ने श्रीपाल को। अभी यह छः महीने का भी नहीं हो पाया कि महाराज हमें छोड़कर चले गए। कितना आनन्द हुआ था उन्हें श्रीपाल के जन्म से। किन्तु उनका भाग्य इस आनन्द को सह न सका।

मतिसागर : महारानी, भाग्यलिपि को कब कौन मिटा सका है। नहीं तो इतने सबल स्वस्थ मनुष्य क्या सामान्य से दाह-ज्वर से खत्म हो जाते ? पर, जो कुछ बीत चुका अब उसके लिए चिन्तित होने से लाभ ही क्या है ? अभी हमलोगों को भविष्य की ओर देखना होगा। अब श्रीपाल और श्रीपाल के राज्य की जिम्मेवारी हमलोगों पर आ पड़ी है। अतः अब आप स्वयं को कठोर बनाइए।

कमलप्रभा : मन्त्रीवर, महाराज के अभाव में मैं स्वयं को एकदम असहाय महसूस कर रही हूँ।

मतिसागर : नहीं महारानी, नहीं। मन को इतना दुर्बल बनाने से काम नहीं चलेगा। श्रीपाल अभी शिशु है। फिर उसका राज्य भी निष्कंटक नहीं है। अब तो हमलोगों को बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है।

कमलप्रभा : सो क्यों मन्त्रीवर ?

मतिसागर : इसीलिए कि महाराज के लघुभ्राता अजित सेन ने सोचा था कि महाराज के जब कोई पुत्र नहीं है तो उनके बाद वे ही राज्य सिंहासन पर बैठेंगे। अतः श्रीपाल इस समय उनकी राह का काँटा है।

कमलप्रभा : तो अब क्या होगा मन्त्रीवर ?

मतिसागर : तभी तो मैं चाह रहा था कि जितनी जल्दी सम्भव हो सके श्रीपाल को राज्य सिंहासन पर बैठाकर आप शासन-भार अपने हाथ में ले लें।

कमलप्रभा : किन्तु·······

मतिसागर : किन्तु विन्तु कुछ नहीं महारानी ! मैं तो सर्व प्रकार से आपकी सहायता के लिए प्रस्तुत ही हूँ। यदि ऐसा नहीं हुआ तो श्रीपाल को केवल राज्य से ही हाथ नहीं धोना पड़ेगा, उसके प्राण जाने का भी डर है।

कमलप्रभा : आप पर तो मेरा पूर्ण विश्वास है मन्त्रीवर ! मेरे परलोकगत पति के समय आप जिस दायित्व का निर्वाह कर रहे थे वह दायित्व अब भी आप पर ही है। आप शीघ्रातिशीघ्र उसके राज्याभिषेक की व्यवस्था करें।

मतिसागर : जैसी आपकी आज्ञा महारानी !

तृतीय दृश्य

[अजित सेन का कक्ष। वह पाशा-गोटी सजाकर बैठा है। उसी समय उसका मित्र वृषसेन प्रवेश करता है। उसी ओर देखकर]

अजित सेन : आओ, आओ वृषसेन ! देखो कैसा घेरा है मन्त्री को।

वृषसेन : शतरंज के इस खेल में तुम मन्त्री को कितना ही क्यों न घेर लो यथार्थ की पृष्ठभूमि पर इसमें कुछ आनी-जानी नहीं है। मालूम है उधर क्या हो रहा है ?

अजित सेन : किधर ?

वृषसेन : किधर क्या ? महाराज की मृत्यु हो गयी है यह खबर भी शायद तुम्हें नहीं मिली है ?

अजित सेन : मिली है। उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के समय भी मौजूद था मैं।

वृषसेन : तब फिर अभी तक चुपचाप बैठे रहने का मतलब ? तुम सोच रहे होगे कि लोग आकर तुम्हें कहेंगे चलिए महाराज, सिंहासन पर

बैठिए। मैं जानते हैं कि अब राज्य का उत्तराधिकारी श्रीपाल ही है।

अजित सेन : किन्तु श्रीपाल तो अभी बच्चा है।

वृषसेन : उसके बच्चा होने से क्या हुआ? उधर मतिसागर मन्त्री जो है। वह महारानी को वश में कर श्रीपाल को सिंहासन पर बैठाकर राज्य भार अपने हाथों में ले लेगा।

अजित सेन : क्या कह रहे हो?

वृषसेन : ठीक ही कह रहा हूँ। तुम इधर शतरंज के इस खेल में राजा मन्त्री को मारते रहो उधर वह मन्त्री श्रीपाल को शिखण्डी बनाकर चम्पा देश का राजा बन जाएगा। कल सुबह ही श्रीपाल का राज्याभिषेक होगा। किन्तु, अंग देश का वास्तविक राजा तो मतिसागर ही होगा।

अजित सेन : महारानी को ज्ञात है यह सब?

वृषसेन : ज्ञात ही नहीं उन्हीं के आदेश से यह सब हो रहा है। तभी तो तुम्हें सचेत करने आया हूँ। जानते हो न, शत्रु को मौका नहीं दिया जाता। जो कुछ करना है आज ही करो, अभी करो।

अजित सेन : मैं भी चुपचाप नहीं बैठा हूँ वृषसेन! महाराज की मृत्यु का सम्वाद पाते ही मैंने मतिसागर को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। किन्तु, वह मिला नहीं। स्वामीभक्ति से प्रेरित मतिसागर श्रीपाल के विरुद्ध नहीं हो सकता। मैं तो कहता हूँ वह मूर्ख ही नहीं महामूर्ख है। अब उसका स्वामी श्रीपाल नहीं अजित सेन है। तभी तो पाशा लेकर बैठा हूँ। देखो कैसा घेरा है मन्त्री को?

वृषसेन : सो कैसे? कैसे?

अजित सेन : उत्कोच देकर सेनापति को वशीभूत कर लिया है। अब सेना मेरे अधीन है।

वृषसेन : साधु! साधु!

अजित सेन : राजपुरुषों ने तो प्रायः-प्रायः सभी ने मेरी अधीनता स्वीकार कर ली है।

वृषसेन : साधु! साधु! किन्तु उधर··· ····

अजित सेन : मतिसागर उधर जो कुछ भी क्यों न करे कल सुबह अंग देश का राजा अजित सेन होगा। अंगाधिपति महाराज अजित सेन। क्यों कैसा लग रहा है सुनने में ?

वृषसेन : लग तो बहुत अच्छा ही रहा है। किन्तु, श्रीपाल इस समय प्रासाद में है और प्रासाद रक्षी सेना भी कम नहीं है।

अजित सेन : जैसे मुझे कुछ ज्ञात ही नहीं है ? वह सब सोचकर ही तो मैंने चारों ओर जाल फैला दिया है। कल का सूर्योदय श्रीपाल नहीं देखेगा। उस मन्त्री को क्या मालूम—जो मेरे पथ का कण्टक होता है उसे मैं इस प्रकार उखाड़ फेंकता हूँ—[अभिनय करके बताता है]—आज रात वह पहुँच जाएगा अपने पिता के पास।

वृषसेन : साधु ! साधु !

[द्वारपाल आता है]

द्वारपाल : सेनापति कीर्तिपाल आपसे मिलना चाहते हैं।

अजित सेन : उन्हें भीतर ले आओ।

[द्वारपाल बाहर जाता है। कीर्तिपाल का प्रवेश]

कीर्तिपाल : महाराज अजितसेन की जय।

अजित सेन : नहीं कीर्तिपाल, अभी नहीं। कल सुबह अंग राज्य के सिंहासन पर बैठूँगा तब।

कीर्तिपाल : मतिसागर ने कल सुबह श्रीपाल को सिंहासन पर बैठाना निश्चित किया है। प्रजागण आज से ही आनन्दोत्सव मना रहे हैं।

अजित सेन : मनाने दो। कल सुबह जब मैं सिंहासनारूढ़ होऊँगा तब भी वे सब ऐसा ही आनन्दोत्सव मनायेंगे। आज रात मैं अन्तःपुर में प्रवेश कर श्रीपाल की हत्या करूँगा।

कीर्तिपाल : किन्तु प्रासाद रक्षी सैनिकों ने यदि बाधा दी तो ?

अजित सेन : अजितसेन का काम इतना कच्चा नहीं है। प्रासाद रक्षी सेना-नायक महेन्द्र वर्मा को मैंने अपनी ओर मिला लिया है। वह कोई बाधा नहीं देगा। मतिसागर ने चाल चलने में एक भूल कर दी। उसने सोचा था श्रीपाल को सिंहासनारूढ़ करते ही प्रजा उसका समर्थन करेगी। तुमलोग भी स्वामी भक्ति के

कारण उसका समर्थन करोगे। किन्तु राजनीति में विश्वास, निष्ठा, स्वामीभक्ति जैसी कोई वस्तु ही नहीं होती। जब तुमलोग मेरे सहायक हो तो प्रजा मेरा कर ही क्या सकती है। वृषसेन—

वृषसेन : क्या आदेश है मेरे प्रति ?

अजित सेन : मेरे राज्याभिषेक के उपलक्ष में···नहीं, नहीं, श्रीपाल के राज्याभिषेक के उपलक्ष में मेरा प्रासाद भी दीपमालिकाओं से सुसज्जित करवाओ, नर्तकियों को बुलवाओ। आज की इस आनन्द रात्रि को उनके हास्य-लास्य में डुबो दो।

वृषसेन : अच्छा····, तो तुम उसी समय प्रासाद में प्रवेश कर···

अजित सेन : हाँ। याद आ रहा है कीर्तिपाल, श्रीपाल के जन्म के समय मेरे मुख से निकला था श्रीपाल कुल-तिलक होगा—तभी तुमने कहा था तिलक नहीं कण्टक। कीर्तिपाल, राजनैतिक चालें इसी प्रकार चली जाती हैं।

[क्रमशः

भगवान पार्श्वनाथ

—हरिसत्य भट्टाचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इन्द्र की ऋद्धि-समृद्धि मिलने पर भी वे भोग-विलास के रोग से अछूते रहे। वे नित्य-प्रति जिन-पूजा करते और देवताओं को वीतराग धर्म के महत्व का उपदेश देते थे। इस प्रकार उन्होंने २० सागरोपम की आयु व्यतीत की।

राजर्षि सुवर्ण बाहु के प्राण लेने वाला सिंह अन्य कोई नहीं, नरक से लौटा हुआ दुराचारी कमठ का ही जीव था।

सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने कुबेर को कहा—"दशवें स्वर्ग का देव हाल ही में मानव लोक में अवतीर्ण होने वाला है। केवल अब ६ मास अवशेष हैं। यह पुरुष २३ वाँ तीर्थंकर होने वाला है। ये भरतक्षेत्र स्थित वाराणसी नगरी में अवस्थित होंगे। इक्ष्वाकुवंशी महाराज अश्वसेन और उनकी धर्मपत्नी पतिव्रता वामा देवी को इन महापुरुष के पिता तथा माता होने का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

तदनन्तर धन कुबेर ने वाराणसी में नित्य प्रति तीन करोड़ रत्नों की वर्षा करनी प्रारम्भ की, कल्पवृक्ष के पुष्प बरसाने लगा और दिव्य गन्धमय निर्मल जल छिड़कने लगा। आकाश में देवदुन्दुभि बजने लगी। एवं वहीं स्थित देव स्तुति गान करने लगे। वाराणसी में ऐश्वर्य की बाढ़-सी आ गई। जन-समूह के आनन्द की सीमा न रही।

एक पुण्य रात्रि को वामा देवी ने १४ स्वप्न देखे। स्वप्न देखने के पश्चात् जागृत होकर महारानी ने स्वप्न का वृतान्त राजा से कह सुनाया। राजा जानता था कि जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं तब उनकी माता इस प्रकार के शुभ स्वप्न देखती हैं। वाराणसी के महाराजा एवं देवलोक के देवों ने यह उत्सव बड़े आनन्द के साथ मनाया।

नौ मास पूरे होने पर पौष मास में कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन वामा देवी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया। इसी समय इन्द्र का आसन हिल उठा, दिशाओं के मुख हर्षातिरेक से देदीप्यमान हो गए। नारकी जीवों को भी एक घड़ी के लिए सुख प्राप्त हुआ। वायु की तरंगों में प्रमोद की मादकता व्याप्त हो गई। तीनों भुवनों ने अपूर्व उद्योत का अनुभव किया। पुत्र का नाम पार्श्वकुमार रखा गया।

प्रभावती कुशस्थल के राजा की राजकन्या थी। एक दिन वह सखियों के साथ वन-क्रीड़ा के लिए निकली। वहाँ उसने किन्नरियों द्वारा गाई जाती हुई श्री पार्श्वकुमार की गुणगाथा सुनी। उसी दिन उसने पार्श्वकुमार के अतिरिक्त किसी अन्य से विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली।

कलिंग देशाधिपति प्रभावती को अपनी बनाना चाहता था। उसने प्रभावती के पिता प्रसेनजित के राज्य के आसपास घेरा डाल दिया। नगर के आवागमन के मार्ग बन्द हो जाने के कारण कुशस्थल की प्रजा भयंकर त्रास पाने लगी। कलिंग सेना के सहज प्रमाद का लाभ उठाकर मन्त्री कुमार कुशस्थल से भाग निकला। उसने जाकर पार्श्वकुमार के पिता को इस आपत्ति का हाल सुनाया। अश्वसेन ने युद्ध की तैयारी कर ली।

पार्श्वकुमार ने पिता को समझा बुझाकर युद्ध का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। कलिंगपति यवन ने पार्श्वकुमार के बलवीर्य और पराक्रम की बात अपने मन्त्री से सुनकर युद्ध का विचार छोड़ दिया तथा अपना कुठार अपने गले में बाँधकर पार्श्वकुमार के चरणों में जा गिरा और बोला—"मेरी धृष्टता क्षमा कीजिए।"

पार्श्वकुमार ने बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त की और फिर पिता के आग्रह से प्रभावती का पाणिग्रहण किया।

एक दिन पार्श्वकुमार अपने महल के झरोखे में बैठे-बैठे विश्व की लीला देख रहे थे। उस समय उन्होंने कुछ स्त्री-पुरुषों को विविध प्रकार का नैवेद्य हाथ में लिए, उत्साहपूर्वक जल्दी-जल्दी नगर के बाहर जाते हुए देखा। उन्होंने प्रश्न किया—"इस प्रकार ये लोग कहाँ जा रहे हैं?"

एक अनुचर ने उत्तर दिया—"कोई तपस्वी पंचाग्नि की साधना कर रहा है। ये लोग उसका सत्कार करने जा रहे हैं।"

कौतूहलवश पार्श्वकुमार भी घोड़े पर सवार होकर उस टोली के पीछे चल दिये। घोड़े पर चढ़ने, हाथी के पीठ पर बैठकर जंगलों में घूमने और जल-क्रीड़ा करने का उन्हें प्रथम से ही अभ्यास था।

पार्श्वकुमार ने निकट पहुँचकर देखा तो एक मृगचर्मधारी जटाधारी तपस्वी पंचाग्नि के मध्य में बैठा हुआ आतापना ले रहा है। पार्श्वकुमार बहुत देर तक इस तापस के कायाक्लेश को देखते रहे।

तापस अपने मन में सोचने लगा—"इतने सारे नर-नारी मुझे प्रणाम करते हैं, भक्ति भाव से नैवेद्य चढ़ाते हैं परन्तु, इस अश्वारूढ़ कुमार की आँखों में केवल कौतूहल मात्र ही है, इसका क्या कारण है?"

एक ओर की अग्नि जरा बुझने लगी, इसलिए तापस ने पास पड़े हुए एक भारी काष्ठ खण्ड को उठाकर उसमें डालने के लिये हाथ बढ़ाया।

"ठहरो।"—पार्श्वकुमार ने सत्तावाही स्वर में कहा।

तापस इस प्रकार की आज्ञा सुनने का अभ्यासी नहीं था। उसके हृदय में बहुत देर से कुमार के प्रति गुप्त रोष भरा था। अतः अब उससे न रहा गया।

पार्श्वकुमार ने तापस के संक्षोभ को पहचान लिया और उसके कुछ बोलने के पूर्व ही कहा—"इस प्रकार के अज्ञानमय तप से, केवल कायाक्लेश से आप किस अर्थ की सिद्धि चाहते हैं?" इस अप्रिय उपदेश में भी तपस्वी ने एक प्रकार की मृदुता और मधुरता की झंकार का अनुभव किया।

"राजकुमार! ज्यादा से ज्यादा तो आप घोड़े नचाना जानते हैं; धर्म-ज्ञान का दावा आप नहीं कर सकते। धर्म तो हमारे अधिकार का विषय है। यह तप केवल कायाक्लेश है या स्वर्ग और मुक्ति दिलाने वाला है, इस बात को जितना हम जानते हैं उतना आप नहीं जान सकते।" साधु के वचनों में तिरस्कार स्पष्ट झलक रहा था।

"यह तो आप भी मानेंगे ही न कि दया के बिना धर्म नहीं रह सकता? और इसमें तो खुल्लम खुल्ला दया का ही दिवाला निकल रहा है।"—पार्श्वकुमार ने तापस का मिजाज ठिकाने लाने के लिये मूल बात पकड़ी।

"आपने कैसे जाना कि इसमें लेशमात्र भी दया नहीं है?" अब तापस के अन्तःकरण में भी अग्नि का संताप धधक उठा।

"आपके अज्ञानमय तप में यह निर्दोष साँप अकारण ही जल रहा है आपको इसकी खबर है?" यह कहकर पार्श्वकुमार ने धूनी में सुलगते हुए एक काष्ठ-खण्ड को अपने मनुष्यों से बाहर निकलवाया। उसे फाड़ने पर उसके भीतर से अग्नि के ताप से व्याकुल और मौत का आखिरी दम भरता हुआ एक बड़ा फणिधर सर्प बाहर निकल आया। पार्श्वकुमार ने उसके कानों में नमस्कार मन्त्र के कल्याणकारी शब्द सुनाए। वह साँप तुरन्त मरकर नमस्कार मन्त्र के प्रताप से नागाधिपति धरणेन्द्र बन गया।

वृहद् भक्त-समूह के सामने तापस की शेखी किरकिरी हो गई। अतः वह क्रोध में धमधमाता और वैर के कारण अबाही-तबाही बकता हुआ वहाँ से चल दिया।

तापस के अज्ञानमय तप और निर्दोष सर्प की अकाल मृत्यु ने पार्श्वकुमार के हृदय को विलोड़ित कर दिया। वे सोचने लगे—"कौन जाने कितने ही

ऐसे अज्ञानी तपस्वी रोज इसी प्रकार असंख्य निरपराध प्राणियों के प्राण लेते होंगे। इतने प्राणियों का वध करने पर भी इन लोगों को अपने आपको धार्मिक कहने में शर्म नहीं आती। हिंसा और धर्म ये दोनों एक साथ किस प्रकार रह सकते हैं? हिंसा से पाप और पाप से दुःख भोग इस साधारण नियम को भी ये अज्ञानी नहीं जानते तो फिर इससे अधिक की इनसे क्या आशा की जा सकती है? अज्ञान तप क्या केवल छिलके को कूटने जैसी ही निष्फल क्रिया नहीं है? दावानल लगने पर अन्य कोई अच्छा मार्ग न मिलने से जिस प्रकार बहुत से अज्ञानी पशु-प्राणी बचने की आशा से पुनः उसी दावाग्नि में कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी तपस्वी भी संसार-सागर से पार उतरने की आशा से कायाक्लेश को धर्म समझ कर संसार दावानल में ही फँस जाते हैं। वस्तुतः सम्यग् श्रद्धा और सम्यग्-ज्ञान के बिना जीव के निस्तार पाने का अन्य कोई उपाय नहीं है।"

पर वह तापस था कौन? उसका नाम था कमठ। अज्ञान तप तपते हुए अन्तःकरण में वैराग्य धारण किए हुए वह कमठ पंक प्रभा नरक के दुःख भोगकर, विविध तिर्यंचों की योनि में भ्रमण करता हुआ यहाँ आया था। वही फिर मेघमाली हुआ।

वायु के कण-कण में बसन्त की मादकता भरी थी। वृक्ष, लता, पुष्प और तोरण सभी ऋतुराज का जयगान कर रहे थे। बसन्तोत्सव के मौन संगीत से दिशाएँ मुखरित हो रही थीं। पार्श्वकुमार भी यह उत्सव मनाने के लिए उद्यान विहार कर रहे थे।

तभी उनकी दृष्टि महल की भीत पर चित्रित एक चित्र पर पड़ी। यह चित्र श्री नेमिनाथ भगवान का था। चित्रकार ने इसमें अपना पूरा-पूरा कौशल दिखलाया था।

"राजिमती जैसी अनन्य अनुरागवती स्त्री का विवाह के समय ही त्याग करके चले जाने वाला पुरुष क्या यही है? यौवन के आरम्भ में नवयौवना का त्याग करने वाला यह पुरुष कितना इन्द्रियजित होगा।" पार्श्वकुमार उपरोक्त चित्र देखते ही विराग भावना की पुनीत श्रेणी पर आरूढ़ हो गए।

चारों ओर व्याप्त विलास प्रमोद की रागिनी में पार्श्वकुमार ने विषाद का स्वर सुना। उत्सव का सब आनन्द हवा हो गया। इनके गृहस्थावास का यह तीसवां वर्ष था।

संसार के स्वरूप को आच्छादित करने वाला पर्दा पार्श्वकुमार की दृष्टि से हट गया। जिस जीव को इन्द्र का अगाध वैभव भी परितृप्त न

कर सका उसे संसार के क्षणिक सुखोपभोग किस प्रकार सन्तुष्ट कर सकते थे ? सारे समुद्र का पान करने पर भी जिसकी तृषा शान्त न हो सकी उसे इस संसार के ओस बिन्दुओं जैसे सुखों से क्या शान्ति मिल सकती है ? इन्द्रिय सुख और इन्द्रिय लालसा के कारण नट के समान अनेक विलक्षण अभिनय करते हुए संसारी स्त्री-पुरुषों की एक बड़ी चित्रशाला को पार्श्वकुमार न जाने कब तक देखते रहे।

उन्होंने संसार त्याग का दृढ़ निश्चय किया। माता-पिता की अनुमति लेकर [वार्षिक दान देकर] वे सर्वस्व त्याग करके चल दिए। देवों और इन्द्रों ने भी उस दिन महोत्सव मनाया। पार्श्वकुमार का संसार-त्याग संसार के लिए महान् सौभाग्य का अवसर था। उनके साथ ३०० राजाओं ने दीक्षा ली।

पार्श्व भगवान विहार करते हुए एक दिन कुएँ के निकटवर्ती एक वटवृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में स्थिर हो गए। सूर्यास्त हो चुका था। पासवाले तापस-आश्रम में भी शान्ति प्रवर्त्तमान थी।

इसी समय मेघमाली ने पूर्व वैर को याद करके भगवान पर अनेक प्रकार के उपसर्गों की वर्षा की।

मूसलधारा वर्षा का उपद्रव अन्तिम और सबसे अधिक कठोर था। मेघधारा क्या थी, मानो प्रलयकाल स्वयं मेघ का रूप धारण करके पृथ्वी पर उतर आया हो। इतना तूफान मच गया कि पानी की एक-एक बून्द शिकारी के गोफन से निकले हुए पत्थर के समान आघात करती थी। सिंह, बाघ, भेड़िया और हाथी जैसे प्राणी घबड़ा उठे। जहाँ पानी ठहर भी न सकता था वहाँ भी वर्षा का जल कृत्रिम तालाब के समान स्थिर हो गया।

वर्षा का यह पानी बढ़ते-बढ़ते कायोत्सर्ग में अचल खड़े हुए भगवान की नासिका तक जा पहुँचा। तथापि भगवान पार्श्वनाथ तो अचल और अडिग ही रहे।

इसी समय धरणेन्द्र का आसन काँपा। उसने तुरन्त आकर भगवान पर अपने सात फणों का छत्र धारण किया। अन्ततः पराजित मेघमाली ने भी भगवान से क्षमा याचना की।

दीक्षा लेने के पश्चात् ८४ दिन बीतने पर चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को विशाखा नक्षत्र में भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

केवलज्ञान के प्रभाव से पार्श्व प्रभु तीनों लोक के समस्त पदार्थों को जानते हैं। उनके आसपास शान्ति, प्रसन्नता और सुख लहराते हैं। वृक्ष और लताएँ भी फलों और पुष्पों के भार से झुके रहते हैं। वे जहाँ जाते हैं वहाँ देव समवसरण की रचना करते हैं। इस समवसरण सभा में सब प्राणियों के लिए स्थान होता है।

भगवान ने देश-देशान्तर में सद्धर्म का खूब-खूब प्रचार किया। काशी, कोशल, पांचाल, महाराष्ट्र, मगध, अवन्ती, मालव, अंग, बंग आदि आर्य खण्ड के समस्त देशों में सत्य धर्म का प्रकाश पहुँचा। संसार के दुःखों से दुःखी, संताप से संतप्त असंख्य जीव भगवान की वाणी सुनकर जिन शासन से प्रेम करने लगे।

भगवान के परिवार में सोलह हजार साधु, अड़तीस हजार साध्वी, एक लाख चौंसठ हजार श्रावक एवं तीन लाख सत्तईस हजार श्राविकायें हुईं। ३५७ चौदह पूर्वी, १४०० अवधि ज्ञानी, ७५० केवली और एक हजार वैक्रिय लब्धिधारी हुए।

कमठ जैसा भगवान का बैरी भी प्रभु की शान्ति और उनका धैर्य देखकर उनके चरणों में गिरा। भगवान का उपदेश सुनकर उसने भी अपने हृदय में रहे हुए जहर को निकाल फेंका। आखिर उसे सम्यग् दृष्टि प्राप्त हुई और वह मोक्ष-मार्ग का अधिकारी हुआ। पार्श्व प्रभु की करुणा-वर्षा, मित्र और बैरी के भेद बिना सर्व जीवों पर समान रूप से होती थी।

कितनेक तापस अज्ञानमय तप कर रहे थे, केवल कायाक्लेश सह रहे थे। उन्होंने पार्श्व प्रभु के सत्यमार्ग को स्वीकार किया।

निर्वाण के एकाध महीना पूर्व भगवान सम्मेद शिखर पधारे। जैन समाज में यह तीर्थ बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ बहुत से साधकों, मुनिवरों का पवित्र आगमन हुआ है। जिस काल के विषय में इतिहास भी मौन है, उस अति प्राचीन समय में इस स्थान पर बहुसंख्यक वैराग्यवान पुरुषों ने आत्म-कल्याण की साधना की है।

इसी स्थान पर पार्श्वनाथ प्रभु ने श्रावण शुक्ला अष्टमी को ३३ मुनिवरों के साथ मुक्ति प्राप्त की। इनकी देह का अन्तिम अग्नि-संस्कार देववृन्द ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक किया।

अब पार्श्वनाथ भगवान तो शान्तिमय सिद्धशिला पर विराजमान हैं एवं अब कभी मर्त्यलोक में वापस नहीं आयेंगे। फिर भी उनका सत्यमार्ग आज

सब के लिये खुला है। उनके नाम से स्मरणीय बना हुआ पार्श्वनाथ पर्वत आज भी मोहभ्रांत मनुष्यों की आँखों में अपूर्व अंजन लगाता है।

यहाँ पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र की बहुत हल्की रेखाएँ चित्रित की गई हैं। जिन्होंने युद्धभेरी अथवा शंखनाद सुनने की आशा की होगी उन्हें शायद इसे पढ़ने पर निराश होना पड़ा होगा। जिन्होंने इसे इसलिये पढ़ा होगा कि इसमें रक्तपात की भयंकर घटनाओं और प्रेममद के रंग-बिरंगे चित्र देखने को मिलेंगे, उन्हें भी शायद यह रुचिकर न हुआ हो। परन्तु, भारतवर्ष के जिन अनेक आर्य महापुरुषों ने कठिन साधना की है और जिन्होंने इस साधना के प्रताप से कभी न बुझने वाली प्रकाश की मशालें जलाई हैं, उन महापुरुषों में से श्री पार्श्वनाथ भगवान भी एक वन्दनीय पुरुष हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

कोई प्रश्न कर सकता है—"पर क्या ये पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष हैं?"

पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष हैं, इसलिये तो जैन मत को बौद्ध धर्म की शाखा कहने वालों को चुप होना पड़ा है। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर कोई जैन धर्म के प्रवर्तक नहीं हैं। इनके पहले भी जैन धर्म वर्त्तमान था। यह बात श्री पार्श्वनाथ के ऐतिहासिक वृतान्त ने सिद्ध कर दी है। महावीर भगवान से पहले भी पार्श्वनाथ ने जैन धर्म का प्रचार किया था। पार्श्वनाथ भगवान महावीर स्वामी जैसे ही ऐतिहासिक पुरुष हैं।

पार्श्वनाथ प्रभु के चरित्र में कितनी ही अलौकिक घटनाओं का होना सम्भव है। परन्तु इतने से ही इनकी ऐतिहासिकता का इन्कार नहीं हो सकता। रामायण, महाभारत और पुराणों के राजवंशों की बात को जाने दीजिये; विक्रमादित्य, राजा भोज और दूसरे राजपूत राजाओं के चरित्र में भी न जाने कितनी विचित्र बातें आ घुसी हैं; तथापि इनकी ऐतिहासिकता के विषय में कोई शंका नहीं करता।

यदि कोई यह सिद्धान्त बना बैठे कि जहाँ अलौकिकता है वहाँ ऐतिहासिकता रह ही नहीं सकती तो फिर तो अशोक और गौतम बुद्ध भी काल्पनिक पुरुष ही माने जायेंगे। ईसाइयों के ईसुख्रीस्त और ईस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद पैगम्बर के चरित्र में क्या अलौकिक घटनायें नहीं हैं? सिक्ख सम्प्रदाय के गुरु नानक, कबीर और गुरू गोविन्द के जीवन में भी अलौकिक घटनायें आई हैं। अभी कल ही की बात है श्री रामकृष्ण परमहंस और केशवचन्द्र सेन का जीवन चरित्र भी ऐसी घटनाओं से अस्पृष्ट नहीं रहा। सारांश यह कि पार्श्वनाथ

भगवान के जीवन चरित्र में अलौकिक घटनायें हैं इसी कारण पार्श्वनाथ नाम का कोई पुरुष हुआ ही नहीं यह बात न माननी न कहनी चाहिए।

जैन आगम साहित्य में गणधर गौतम और केशी का एक संवाद मिलता है। इस सम्वाद में यदि तनिक भी ऐतिहासिकता हो तो इस बात में जरा भी शंका न होनी चाहिए कि महावीर स्वामी के पूर्व जैन सम्प्रदाय था और भगवान पार्श्वनाथ उसके परिचालक थे। आचार्य केशी पार्श्वनाथ भगवान के शिष्य थे। वे पार्श्व भगवान के अनुयायियों के एक नेता भी थे। गौतम स्वामी और इनमें जो सम्वाद हुआ उसमें क्या महावीर स्वामी ने ही सर्वप्रथम सत्यधर्म का प्रचार किया है? महावीर स्वामी प्रदर्शित मार्ग पर चलने से जीवों की मुक्ति हो सकती है या नहीं इत्यादि प्रश्नों की छान-बीन की गई है। यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है। केशी मुनि के सब प्रश्नों का गौतम स्वामी ने सन्तोषकारक समाधान किया था।

आचार्य केशी ने पूछा : "पार्श्वनाथ तो चार महाव्रत बतलाए हैं, फिर वर्द्धमान पाँच क्यों बतलाते हैं?"

गौतम स्वामी उत्तर देते हैं—"पार्श्वनाथ को अपने समय की स्थिति के अनुसार चार महाव्रत ही उचित प्रतीत हुए होंगे। महावीर ने अपने काल के औचित्य के अनुसार इन्हीं चार व्रतों को पाँच व्रतों में विभक्त करना उचित समझा। वस्तुतः सिद्धान्त की दृष्टि से तो दोनों तीर्थंकरों के निरुपण में कुछ भी भेद नहीं है।"

अचेलक और सचेलक विषय की चर्चा करते हुए गौतम स्वामी एक और समाधान भी करते हैं :—

वस्त्र के त्याग अथवा स्वीकार के बारे में भी कुछ मतभेद नहीं है। लोगों के विश्वास के लिए ही भिन्न-भिन्न प्रकार के उपकरणों की कल्पना की गई है। संयम निभाने के लिए और अपने ज्ञान के लिए भी लोगों में वेष का प्रयोजन है। नहीं तो, निश्चय नय के अनुसार तो ज्ञान, दर्शन, और चारित्र ही मोक्ष के सत्य साधन हैं। इस प्रकार पार्श्व भगवान और वर्द्धमान स्वामी की एक-सी प्रतिज्ञा है। वेष तो केवल व्यवहारनय की उपेक्षा से है।

पार्श्व भगवान के सम्प्रदाय के नायक श्री केशी कुमार को इससे विश्वास हो जाता है कि पार्श्वनाथ भगवान और वर्द्धमान स्वामी के उपदेश में किसी प्रकार का मौलिक मतभेद नहीं है। इसके पश्चात् दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे में मिल गये।

इस विवेचन से इतना सिद्ध होता है :—

(१) भगवान महावीर के पूर्व भी जैन सम्प्रदाय था।

(२) यह सम्प्रदाय पार्श्वनाथ को तीर्थंकर मानता और उनके उपदेश में पूर्णतः श्रद्धा रखता था।

(३) महावीर स्वामी ने पार्श्वनाथ के शासन का संस्कार और संशोधन करके उसका खूब प्रचार किया था। उन्हें कुछ नवीन बात कहनी न थी। केशी-गौतम सम्वाद पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को सिद्ध करता है।

जैन मन्तव्य के अनुसार भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ है। भगवान पार्श्वनाथ की आयु १०० वर्ष की थी। ईसवी सन् के ५९९ वर्ष पूर्व महावीर स्वामी का जन्म और ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ था। ५२७ में २५० और १०० मिलाने से ८७७ होते हैं। अतएव ८७७ वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ भगवान के जन्म से यह भारत भूमि धन्य हुई थी।

भगवान पार्श्वनाथ ३० वर्ष गृहस्थावस्था में और ७० वर्ष व्रतावस्था में रहे अर्थात् उन्होंने कुल १०० वर्ष की आयु भोगी।

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः॥

कमठ ने प्रभु पर उपसर्ग किए फिर धरणेन्द्र ने उनकी भक्ति की तथापि पार्श्वनाथ ने तो दोनों पर समान दृष्टि ही रखी। ऐसी समान दृष्टिवाले प्रभु आपकी सम्पत्ति के लिए हों!

जैन पत्र पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त ॥ अप्रैल १९८०

इस अंक में है 'आत्मा सर्वथा असंख्यात प्रदेशी है' (पद्मचन्द्र शास्त्री), 'श्री अगरचन्दजी नाहटा और उनकी साहित्य साधना' (डा० मनोहर शर्मा), 'जागरण' (बाबूलाल जैन), 'आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत' (पद्मचन्द्र शास्त्री), 'क्या तिलोयपण्णति में वर्णित विजयार्ध ही वर्त्तमान विन्ध्यप्रदेश है ?' (डा० राजाराम जैन), 'पचराई और गुडर के महत्वपूर्ण लेख' (उषा जैन), 'जैन दर्शन का अनेकान्तवाद' (डा० रामानन्द मिश्र), 'हुंबड जैन जाति की उत्पत्ति एवं प्राचीन जनगणना' (अगरचन्द नाहटा), 'सीता जन्म के विविध कथानक' (गणेशप्रसाद जैन)।

अमर भारती ॥ मई १९८०

उपाध्याय श्री अमरमुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक मे है 'साधना कुटी : चिदम्बरम' (श्री विजयमुनि शास्त्री), 'जैन धर्म की विशेषता' (अगरचन्द नाहटा), 'षड्-द्रव्य में पुद्गल-द्रव्य' (श्री विजयमुनि शास्त्री)।

जिनवाणी ॥ मई १९८०

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन कर्म सिद्धान्त : बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया [२]' (डा० सागरमल जैन), 'ज्ञान और प्रज्ञा' (आर० एस० कूमट), 'गृहस्थ साधक टीप' (जशकरण डागा), 'भारतीय दर्शन की समन्वय दृष्टि' (मंजुला बम्ब)।

जैन जगत ॥ मई १९८०

इस अंक में है 'आत्म-सिद्धि' (मुनि श्री कन्हैयालाल), 'जैन दर्शन : विज्ञान की कसौटी पर' (सुरेन्द्र जैन), 'भेद विज्ञान की साक्षात् मूर्ति पूज्या विचक्षण श्री जी' (अगरचन्द नाहटा), 'Jain Contribution to Indian Society' (V. A. Sangave).

तीर्थंकर ॥ मई १९८०

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'कोकण में जैन धर्म' (डा० विलास आदिनाथ संगवे), 'मुझे मिले : कंकर के बहाने रत्न' (अगरचन्द नाहटा), बोधकथा 'गुलाम का गुलाम' (नेमीचन्द पटोरिया) 'भेट/शब्दों से' (नेमीचन्द जैन), 'अन्तिम पृष्ठ/खत के रूप में चिन्तन' (गणेश ललवानी)।

विजयानन्द ॥ मई १९८०

श्री कस्तूरभाई विशेषांक

इस अंक में है 'युग प्रभावक श्री कस्तूर भाई' (दलसुख मालवणिया), 'आदर्श श्रेष्ठी, आदर्श नेता, आदर्श उद्योगपति सेठ श्री कस्तूर भाई लाल भाई' (रतिलाल दीपचन्द देसाई), 'श्री कस्तूर भाई और आनन्द जी कल्याण जी की पेढ़ी' (तिलकधर शास्त्री)।

श्रमण ॥ मई १९८०

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'अनेकान्त : एक दृष्टि' (ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार'), 'महत्वपूर्ण जैन कला के प्रति जैन समाज की उपेक्षा वृत्ति' (अगरचन्द नाहटा)।

श्रमणोपासक ॥ मई १९८०

आचार्य श्री नाना लालजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन, बौद्ध और गीता के दर्शन में समत्वयोग [३]' (डा० सागरमल जैन), 'महापुरुषों के प्रति आक्षेप एवं निन्दा क्यों ?' (रतनलाल जैन)।

Vol. IV No. 2 : Titthayara : June 1980
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001